विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१ पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष १० • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२४ • मार्गशीर्ष पूर्णिमा [शक] • दि. २१-१२-१९८० • अंक ७

विपश्यना की विश्व-यात्रा–२

(ख)

पिछले ११ वर्षों के दौरान भारतमें लगे अनेक शिविरोंमें विश्वके ८४ देशोंके लोग सम्मलित होकर लाभान्वित हुए हैं। इन शिविरोंमें जो विदेशी आए वे अधिकांश वही थे जिनकी उम्र बीसीके अन्तर्गत थी। ये अपने-अपने देशके दूषित पारिवारिक और सामाजिक ढांचेसे विद्रोह करके हिप्पी बनकर भारत आए थे। ये नवयुवक-नवयुवतियाँ अपने माता-पिता की इच्छाओंका सर्वथा उल्लंघन करके हर प्रकारके सामाजिक बंधनोंको ठुकराते हुए स्वेच्छाचारकी दूसरी अतियोंमें चले गए थे जो कि पहली अवस्थासे भी कहीं अधिक खतरनाक साबित हुई। साधन-सुविधाओंका सर्वथा परित्याग करते हुए चीथड़े कपड़ोका पहनना, अर्धनग्न रहना, शरीरको गंदा रखना, बालोंको बेतरतीब बढ़ाए रखना और उनकी सफाईका जरा भी ध्यान न रखना, गंदे स्थानोंमें निवास तथा हर प्रकारके मादक द्रव्यों – जैसे गांजा, चरस, सुल्फा, भांग आदिसे लेकर एल. एस. डी. तकके घातक नशीले रसायनोंके उपयोग इनके दैनिक जीवनके अंग बन चुके थे। उन्मुक्त यौनाचार इनकी हॉबी हो गई थी। नई पीढ़ीका यह जीवन-व्यवहार पिछली पीढ़ीकी सामाजिक बुराइयों और कुरीतियोंसे कहीं अधिक खतरनाक था -- न केवल स्वयं उनके लिए बल्कि पूरे समाज और राष्ट्रके लिए भी।

उन्मुक्त यौनाचार और नशे-पतेकी खुली छूटमें उलझे यह युवक-युवतियाँ धीरे-धीरे स्वतः अनुभव करने लगे कि इससे कोई सुख-शांति तो नहीं ही मिल रही है। अतः शांतिकी खोजमें इधर – उधर भटकने लगे और इस प्रकार आध्यात्मिक खोजकी ओर उन्मुख हुए। धर्मकी खोजमें संप्रदायोंके दलदलमें फंसते – फंसाते जो लोग विपश्यनाके किसी दस दिवसीय शिविरसे गुजरे तो शुद्ध धर्मकी सच्चाई और गहराई मापकर अत्यंत संतुष्ट प्रसन्न हुए। शिविर पूरा करने पर पाया कि दोनों अतियोंको त्यागकर मध्यम मार्ग पर चलना ही श्रेयस्कर है। अतः इस वर्गके लोगोंमें शुद्ध धर्मकी बात जोरोंसे फैलती चली गई। लोग हजारोंकी संख्यामें शिविरमें आए और विपश्यनाके अभ्यास द्वारा अपने अन्तर्मनको धोते हुए जब स्वदेश लौटे तो इनके माता-पिताओंको लगा कि अब तो ये और भी पथ-भ्रष्ट हो गए हैं। क्योंकि धर्मको भलीभांति न समझनेके कारण संप्रदायको ही धर्म माननेवाले ये कट्टरपंथी माता-पिता अपनी संतानको घरसे बाहर जाते हुए देखकर क्षुब्ध तो थे पर फिरभी आशाकी एक किरण शेष थी कि समयके थपेड़ोंसे ठोकर खाकर ये बच्चे कभी वापस लौटेंगे ही। परन्तु जब देखाकि यह तो भारत जाकर "अपना धर्म" भी छोड़ बैठे और अब किसी "परार धर्म" में दीक्षित हो गए हैं तो अत्यंत निराश और क्षुब्ध हो उठे। उन्हें लगता कि अब ये बेदीन और बिधर्मी बन चुके हैं। एक ओर इनके चेहरों पर आयी कांति और शांति तथा समाजके अनुरूप वेश-भूषा और साफ-सफाई देखकर उन्हें संतोष होता तो दूसरी ओर इन्हें "धर्म-च्युत" हुआ देखकर उनका रोष बढ़ता चला जाता। इनके हजार समझाने पर भी संप्रदायोंके लेपोंसे चिपके उनके बुजुर्ग माता-पिता अपने बच्चोंको बिधर्मी ही मानते रहे। उनकी इस आशंकाको और बल मिलता चला गया जबकि उन्होंने पाया कि यह तो सुबह-शाम आँख बंद करके घरके एक कोनेमें बैठे रहते हैं। न सुबह टहलने जाते हैं और न ही शामको किसी नाच-गान, सिनेमा-थियेटर अथवा किसी राग-रंग में सम्मिलित होते हैं। शराब ही नहीं, सामिष भोजन भी छोड़ बैठे हैं। तो आखिर स्वस्थ कैसे रहेंगे? ऐसी अनेक बातें जो उनकी अपनी परंपराके विपरीत थीं, उन्हे बौखला देनेके लिए पर्याप्त थीं। उन्हें लगता कि इससे तो पहली अवस्था ही अच्छी थी। अब इनको इस नए दलदलसे कौन उबारे?

धम्म वाणी

माता-पितु उपट्ठानं
पुत्त दारस्स सङ्गहो,
अनाकुला च कम्मन्ता
एतं मंगलमुत्तमं ॥

मंगल सुत्त-५.

माता-पिता की सेवा करना, परिवारका पालन-पोषण करना, और आकुल-व्याकुल न करने वाला निर्धाप व्यवसाय करना, यह उत्तम मंगल है।

भारतमें अनेक शिविरोंमें सम्मिलित होकर स्वदेश लौटे इन धर्मपुत्रों--पुत्रियोंने संकटकी इन गहन चुनौतियोंका बड़े धीरज और समझदारीके साथ सामना किया। माता-पिताके संरक्षणसे अलग-थलग ये स्वतःके श्रमसे धर्ममय जीवन जीनेकी ओर अग्रसर होते गए। अनेक विचलित भी हुए और पू. गुरूजीके पास उनके पत्र आते रहे कि ऐसी विपरीत परिस्थियोंमें कैसे धर्ममय जीवन जिएँ? गुरूजी मंगल मैत्रीके साथ दो शब्द लिखकर उन्हें उत्साहित करते रहे कि ऐसी चुनौतियाँ ही तो धर्ममें पुष्ट होनेके लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं! ऐसे उत्तर पाकर वे दुगुने उत्साहसे पुनः उठ खड़े होते। ऐसी विपरीत परिस्थितियोंके बावजूद धर्मके निरंतर अभ्याससे इनके तन और मन दोनों में आए हुए निखार तथा चाल-ढाल, बर्ताव-व्यवहार ने बरबस ही लोगोंको आकर्षित किया तो समय पाकर माता-पिता भी अछूते न रह सके। फिर भी उनके मनसे शंकाके बादल पूरी तरह नहीं ही दूर हुए। वे इन्हें विधर्मी ही मानते रहे।

यही प्रमुख कारण था कि इन साधकोंने अपने माता-पिता तथा अन्य परिचित-मित्रों और सगे-संबंधियोंके कल्याणार्थ पू. गुरूजीको अपने देशमें आकर धर्म-साधना सिखानेका आग्रह करना शुरू किया। संयोगसे गत वर्ष विपश्यनाकी पहली विश्व यात्रा हुई और उस समय भी अनेक ऐसे भ्रमित माता-पिता शिविरोंसे लाभान्वित हुए। इस बारकी यात्रामें उससे कहीं अधिक संख्यामें सम्मिलित हुए। अब उनके मनसे आशंकाके बादल छटने लगे हैं और भविष्यमें शिविरोंके आयोजनके लिए उनकी ओरसे भी गहरे आग्रहपूर्ण आमंत्रण आने लगे हैं। शिविरोंसे लाभान्वित ऐसे माता-पिताओंके कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं :-

स्विटजरलैंडके १८० वें शिविरमें बिएट्रिसकी माता इवेत्त फैटियो नामक एक ७२ वर्षीय महिला शामिल हुई। वह अपनी एक मात्र पुत्री और जामाताके विपश्यनाधर्मी होनेसे क्षुब्ध थी परन्तु स्वदेशमें शिविर आयोजित होनेपर केवल इस विधिको परखनेके लिए चली आयी। जैसे बताया गया, काम करती गई। बड़ी ही पुण्यशालिनी थी। विपश्यना देते ही सारे शरीरमें अनित्य-बोध जाग पड़ा और उस दो घंटेके भीतर ही समग्र शरीर पिंडमें धारा-प्रवाह अनुभूति होने लगी। अब तो भाव-विभोर हो गई। जैसे कोई बहुत बड़ी अमूल्य निधि मिल गई हो। भाव विभोर होकर गुरूजीके पास आयी और अपनी पूर्व आशंकाओंके दुष्पापसे बचनेके लिए गिड़गिड़ाती हुई क्षमायाचना करने लगी। साथ ही अपनी पुत्री और जामाताके प्रति भी अत्यंत कृतज्ञ हुई।

मांट्रियलके शिविरमें एक अमरीकी महिला जॉन निकॉल्स सम्मिलित हुई जो कि वाशिंगटनमें अमरीकी सरकारके विधि-मंत्रालयमें अधिकारी पद पर है। इस महिलाका भाई आर्थर निकॉल्स अत्यंत सुशिक्षित है। पर ७-८ वर्ष पूर्व हिप्पी बनकर घरसे भाग निकला था और भारतमें पू. गुरूजीके संपर्कमें आकर विपश्यना साधनाके मार्ग पर चलते हुए पूरा बदल चुका था। उसी युवकने अपने माता-पिताको साधनाकी ओर आकर्षित किया और दोनों कुछ वर्ष पूर्व भारत आकर दिल्लीकी अंध-विद्यालयमें लगे शिविरमें सम्मिलित होकर लाभान्वित हुए थे। अब दोनोंके दोनों कुशल विपश्यी साधक हैं। इनके आग्रहसे ही उनकी यह बेटी कैनेडाके इस शिविरमें शामिल होने आयी और शुद्ध धर्मकी कल्याणकारी साधना प्राप्त कर निहाल हुई। बहन जॉन अपने भाई आर्थरका और माता-पिताका बार-बार धन्यवाद करती थी, जिनकी वजहसे कि उसे नया जीवन मिला।

शिकागोके शिविरमें राबर्ट प्रायर नामक साधकके माता-पिता श्रीमती डोरॉएथी और श्री पॉल प्रायर सम्मिलित होकर अत्यंत संतुष्ट प्रसन्न हो अपने पुत्रके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए घर लौटे। इनका पुत्र राबर्ट इस समय बोधगयामें है। उसने वहाँसे लिखा है कि घर लौटकर उसके माता-पिता बड़ी ही लगनसे विपश्यना-अभ्यासकी निरन्तरता कायम रखे हुए हैं और नियमित अभ्याससे बड़ा सुख अनुभव कर रहे हैं। वे भारत आकर कुछ शिविरोंमें लगातार सम्मिलित होकर इस विधिका अधिक लाभ लिया चाहते हैं।

इसी शिविरमें एलिस ग्रीन नामक एक और वृद्धा शामिल हुई जिसकी पुत्री अनुसूया गोलमैन भारतके अनेक शिविरोंमें सम्मिलित होकर अनेक वर्ष पूर्व स्वदेश लौटी थी। किसी प्रकार अपनी माताको समझा-बुझाकर इस शिविरमें ले आयी। जहाँ एक ओर माँ की सेवा करके बेटी संतुष्ट थी वहाँ दूसरी ओर बेटीके कारण धर्मके संपर्कमें आने और अवर्णनीय सुखानुभूतिसे माँ उसके प्रति कृतज्ञ और भावविभोर थी।

इसी प्रकार मेंडोसिनोके शिविरमें बूढ़ी एन्न बर्नस्टीन, लिलियन मर्केल तथा बेट्टी जॉन अब्रहाम्स और उसका पति मैसी अब्रहाम्स अपने बच्चों के कारण ही शिविर में सम्मिलित हुए थे। सभी संतुष्ट प्रसन्न थे। इस शिविरमें ऐसे ही अनेक साधकोंके भाई-बहन भी सम्मिलित हुए जो कि अमेरिकामें उच्च पदों पर कार्यरत है। वे सबके सब धर्म प्राप्त कर इसलिए कृतज्ञता-विभोर थे कि यदि धर्मगंगा उनके समीप तक न आती तो शायद सारी जिंदगी प्यासे ही रह जाते।

मेंडोसिनो-शिविर-समापनके बाद गुरूजी बिल रोशनबर्ग के यहाँ दो-तीन दिन रुककर आगेकी यात्रा पर रवाना हुए। बिल और उसकी पत्नी मर्सिया दोनों ही बहुत पुराने साधकोंमें से हैं। धर्मके संपर्कमें आनेके बाद ही इन दोनोंने पू. गुरूजीका आशिर्वाद प्राप्त कर विवाह-सूत्रमें बंधकर पवित्र दाम्पत्य-जीवन जीनेका निर्णय किया। अब वे सैनफ्रॉसिसकोसे सटे हुए शहर बर्कलेमें धर्ममय सुखी गृहस्थ-जीवन जी रहे है। बिलके माता-पिता और मर्सियाकी माता, तीनों ही अपने-अपने बच्चोंके हिप्पीपनसे अत्यंत नाराज थे। हिप्पीपन छूटा देखकर खुश हुए परन्तु कट्टर यहूदी होनेके कारण संप्रदायकी खोलसे चिपके ये बुजुर्ग अपने बच्चोंको विधर्मी हुआ देखकर और भी क्षुब्ध हो उठे। उनके गृहस्थ-जीवनसे भी वे सर्वथा असंतुष्ट थे। क्योंकि उन्हें विवाह-सूत्रमें बंधा हुआ देखकर जब बिलके माता-पिताने उन्हें एक टेलीविजन सेट और ऐसे ही आमोद-प्रमोदके कुछ अन्य उपकरण भेंट देने चाहे तो इन्होंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि अभी हम दोनों अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी करनेमें लगे हैं। जीविकोपार्जनके लिए कुछ काम भी करते हैं और इसके अतिरिक्त जो समय बचता है उसे ध्यान-साधनाके अभ्यासमें लगाते हैं। अतः इन बेकारकी चीजोंमें बरबाद करनेके लिए उनके पास समय नहीं हैं। इससे उनका रोष और बढ़ गया और उन्होंने रहा-सहा संबंध भी काट लिया।

इस सबके बावजूद ये बच्चे प्यार और करुणासे ओत-प्रोत होकर समय-समय पर अपने सशंकित माता-पितासे संपर्क करते और श्रद्धा तथा सेवाभावसे उन्हें यथासंभव धर्मकी बात बताते। अपने बारेमें वस्तुस्थिति समझानेका प्रयास करते। लेकिन फिर भी उन्हें शंकाके बाहर तो नहीं ही निकाल पाए। संयोगवश शिविर-समापनके समय ये लोग घूमनेके लिए सानफ्रांसिसको आए हुए थे। सुना कि आचार्य उनके बच्चोंके घर ठहरा है तो उत्सुकतावश मिलने चले आए। सोचा देखें तो सही कि यह कैसा "विधर्मी पुरोहित" है जिसने हमारे बच्चों पर जादू कर रखा है। आए तो थे कौतूहल-वियताके ही वशीभूत होकर परन्तु जब आधे घंटे तक पू. गुरूजीके साथ धर्म-चर्चा की और उन्हें सीधे-सादे, लोकव्यवहारमें कुशल एक सद्गृहस्थके रूपमें पाया तो अत्यंत प्रभावित हुए। अज्ञानताका पर्दा हटा तो उन्हें लगा कि हमने इन बच्चों और उनके आचार्य के प्रति आशंका करके बड़ा अपराध किया है। सच्चाई तो यह है कि ये ही धर्ममय जीवन जी रहे हैं। हम तो सचमुच अपने संप्रदायोंसे चिपके हैं। अब इस बातका उन्हें बड़ा पश्चाताप होने लगा कि १०-१२ दिन पहले मिल पाते तो धर्मका प्रत्यक्ष लाभ लेते। आज तो पू. गुरूजीका अमेरिकामें अंतिम दिन था। हवाई अड्डे जानेकी तैयारियाँ हो चुकी थीं। इसी बीच उनका आग्रह तीव्र होने लगा कि इस पकी हुई अवस्थामें हम बाहर जा नहीं सकते और दुबारा शिविर कमसे कम साल भर बाद लगनेवाला है। तब तक अभ्यास करते रहनेके लिए हमें कुछ तो सिखाकर जाइए। गुरूजी पशोपेशमें पड़ गए। कुछ ही मिनटोंमें हवाई अड्डेके लिए रवाना होना है, जबकि इन बुजुर्गोंका यह आग्रह उन्हें हृदयकी गहराईसे निकलता हुआ प्रतीत हुआ। अतः बाहर जानेकी तैयारीमें पहने कपड़ोंमें ही कुर्सी पर बैठे-बैठे उन्हें विधिवत आना-पानकी साधना सिखाई जिसका कि अभ्यास वे अमेरिकामें भावी शिविर लगने तक करते रहेंगे। तीनो आना-पान पाकर अत्यंत भावविभोर थे। धन्य है धर्म! धन्य है धर्मका सर्वव्यापी, लोक-कल्याणकारी प्रभाव; जिसकी वजहसे सारे विरोध स्वतः समाप्त हो जाते हैं!

—संपादक

विपश्यना विश्व-यात्रा—२

(क) का शेषांश

१८५ वां और इस यात्राका अंतिम शिविर अस्ट्रेलियाके पश्चिमी तट पर स्थित दूसरे बड़े नगर पर्थ में लगा। स्वान नदीके किनारे शिविर-स्थल अत्यंत मनोरम और शांत वातावरणमें था। लोगोंने गंभीरतापूर्वक काम किया और परिणामतः ७६ लोगोंका यह शिविर अत्यंत सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। यहांके भी किसी एक साधकने विपश्यना ध्यान केन्द्रके लिए जमीन दान दे रखी थी। गुरूजीने इसका निरीक्षण किया और इसे ध्यानकेन्द्रके सर्वथा उपयुक्त पाकर स्वीकार किया। पर्थमें भी सिडनीकी ही भांति एक अलग ट्रस्टका गठन किया गया जो कि इस क्षेत्रमें धर्म-सेवाके कार्यको विधिवत संचालित करता रहे।

मृत्युञ्जयी

मृत्युंजयीका प्रचलित अर्थ बड़ा भ्रामक हो गया है। "मौत पर जीत हुई" का मतलब "मौत नहीं आयेगी" ऐसा कदापि नहीं होता। हमारे मनमें मृत्युके समयकी शारीरिक पीड़ा एवं मानसिक संताप होनेके अनुमानका एक भीषण भय समाया हुआ है। अमर रहनेकी लालसाका प्रमुख कारण इस भयसे त्राण पाना ही है।

"मृत्यु पर विजय" का अर्थ है -- जन्म न होने देना। जन्म हो गया, जीवन प्रवाह चल पड़ा तो फिर मृत्यु अवश्यंभावी है। उससे बचनेका कोई उपाय नहीं है। यह एक अमिट धर्म-विधान है, अटल सच्चाई है। परन्तु यदि जन्म होना रुक जाय तो मृत्युसे अपने आप छुटकारा हो गया। और यही निर्वाण है, मुक्ति है, मोक्ष है। विपश्यना ध्यान साधनाका यही अंतिम उद्देश्य है। यही अंतिम लक्ष्य है। इस लक्ष्यकी ओर हमारी प्रगतिका एक माप-दण्ड हमारे मृत्यु-क्षणकी अवस्था है। उस समय यदि प्राण रोते-कराहते, भयभीत, नींद-बेहोशी या मोह-मूर्छामें निकलते हैं तो दूसरा जन्म और उससे लगी मृत्यु निश्चित है। और इस अवस्थामें यह भी निश्चित है कि नया जन्म किन्हीं अधोगतियों याने नीची योनियों में होगा जिससे कि फिर मनुष्य योनिमें आना अत्यंत दुर्लभ है। परन्तु यदि जाग्रत अवस्थामें, सचेतन अवस्थामें शरीर छोड़े याने उदय-व्यय रूपी अनित्य स्वभावको समझते हुए निर्भय और शांत चित्त से शरीर छोड़े तो सद्गति होगी ही। और नितांत अनासक्त अवस्थामें देह त्यागे तो निश्चितरूपसे मृत्युंजयी बन ही जायेगा।

ऐसी मृत्युको 'मरनेकी कला' कहते हैं। यह कला तभी आयेगी जबकि जीनेकी कला आए। इस जीनेकी कलाके लिए ही संवेदनाके आधार पर विपश्यनाका दैनिक अभ्यास कर रहे हैं जिसके बल पर अनित्यताका बोध दिन पर दिन स्पष्ट होता चला जायेगा जो कि मृत्युके समय चैतन्य-प्रवाहको जाग्रत करेगा और यह सत्यानुभूति साधकको निर्भय-निःशोक बनायेगी ही। इस बातके प्रमाण अब तकके अनेक मृत्यु-प्राप्त साधकोंमें स्पष्ट रूपसे पाए गए हैं। ऐसे जागरूक रहते देह-त्यागने वाले साधकोंकी मृत्युका दृष्टांत समय-समय पर पत्रिकामें प्रकाशित करनेका उद्देश्य साधकोंमें ध्यानके प्रति प्रेरणा बढ़ाना मात्र है। ताकि अभ्यासकी निरन्तरता कायम रखते हुए साधक सही मानेमें मृत्युंजयी बन सके।

इसी प्रकारका एक समाचार माधोगंज; प्रतापगढ़ (उ. प्र.) के श्री जीतलाल गुप्ताने लिख भेजा है, ... "हमारे पिताजी भिक्षु उपालिजीका परिनिर्वाण दि. २७-७-८०, दिन रविवारकी प्रातः चार बजे बिना किसी कष्टके कुर्सी पर बैठे-बैठे, बात-चीत करते हो गया। मरणोपरान्त भी उनके चेहरेका स्वरूप और कांति देखने लायक थी। साधककी अच्छी मृत्युका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है ..."

भिक्षु उपालिजी १९६९ में सारनाथ (वाराणसी) में लगे भारतके चौथे शिविरमें सम्मिलित हुए थे। तदनन्तर उन्होंने कुछ एक अन्य शिविरोंमें भी भाग लिया और अभ्यास की निरन्तरता कायम रखी थी। उनकी प्रेरणासे अनेक गृहस्थ और भिक्षु शिविरोंमें सम्मिलित होकर लाभान्वित हुए हैं। इस प्रकार पर-सेवा और आत्मसेवा करते हुए उन्होंने अपना मानव-जीवन सफल बना लिया।

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक : १९१ : हैदराबाद दि. २–२–८१ से १३–२–८१ तक (हिन्दी) (विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, १२.६ कि.मी. नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, हैदराबाद–५०० ०३५. फोन नं. ५९२५९.)

संपर्क : १) श्रीमती ऊशा पी. मेहता, ६१, श्रीनगर कॉलोनी, हैदराबाद (आं. प्र.) ५००८७३ फोन - ३०२९१ अथवा

२) श्री पूरनमल अग्रवाल, होटल राजधानी, सिदिअम्बर बाजार हैदराबाद–५०० ०१२ (आं. प्र.) फोन – ५७५७१.

पू. गुरूजी का स्वयं–शिविर : इगतपुरी (वि. वि. वि.) ता. १९–१–८१ से ३०–१–८१ तक (इस अवधि के बीच पू. गुरुजी से कोई संपर्क नहीं कर सकेगा और बाहरी व्यक्तियों तथा थोड़े समय या छोटे स्वयं-शिविर के लिए आनेवालों के लिए भी विद्यापीठ बंद रहेगी।)

शिविर क्रमांक : १९२ इगतपुरी (वि. वि. वि.) ता. १५–२–८१ से २६–२–८१ तक (अंग्रेजी)

संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३ (नासिक, महाराष्ट्र) फोन नं. ७६

शिविर क्रमांक : १९३ काठमांडू (आनंद कुटी दायक सभा, नेपाल) (मार्च के प्रथम सप्ताह में होगा। तिथियां अभी निश्चित नहीं हैं।)

संपर्क : श्री मणिहर्ष ज्योति, ज्योति भवन, पो. बॉक्स नं. १३३, काठमांडू (नेपाल) फोन नं. : ११४९०, ११२९०, तार : हिमालआयरन.

सूचना : १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर–व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। **किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।** २) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी–प्रवचन सुनने लिए हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहती है। ३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

तार – बिसाउका फोन नं. : आ. २५५०८२ घर ५७६०३८

मेसर्स बसंतलाल जटिया एण्ड कं.

तीसरा माला, लालमणि, २५/३१ डॉ. ए. एम. रोड, भुलेश्वर, बम्बई–२.

की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

चिलम चढ़ायी सुलफिया, पीवै मदिरा भांग।
मन मैला, त। चीथड़ा, किस क काढ्या सांग॥
बेडोळी टोळी क ज्यूं, सिवजी की बारात।
दुराचरण रा पूतला, करै घणा उतपात॥
अंग अंग निरलज्जता, दया मया दी छोड़।
बिमल मिनखकी खोळ पर, वणी लगायी खोड़॥
लिपट्या मूरख नरक मँह, काम भोग व्यभिचार।
धरम मिल्यो तो सहज ही, छुटग्या मिथ्याचार॥
अजामील गणिका जिसा, करै पाप सूँ प्रीत।
धरम रीत पायी इसी, पावन हुया पुनीत॥
सील समाधी ग्यान को, पायो पथ अनमोल।
पाप छूटग्यो, धरम को पीवै इमरत घोल॥

तार -- प्रेमकेबल फोन ४०३५७/४४५४७

मेसर्स दि प्रीमियर केबल कम्पनी

१४/१५ एफ, कनॉट प्लेस, नई–दिल्ली ११०००१

की मंगल कामनाओं सहित

↓

दोहे धर्म के

शुद्ध धरम ऐसा मिला, छूटे स्वैराचार।
तनके मनके मल धुले, स्वच्छ हुआ व्यवहार॥
प्रज्ञा की साबुन मिली, मिला शील का नीर।
मिला ध्यान बल, धो लिए मनके मैले चीर॥
धरम पंथ जिसको मिला, वो ही हुआ निहाल।
औरों को प्रेरित करे, अपनी सुधरी चाल॥
माँ बापू प्रिय बंधु जन, स्वजन सनेही मीत।
सभी चाखें धरम रस, ऐसी उमड़ी प्रीत॥
माँ बापू का ऋण प्रचुर, प्यार अपरिमित होय।
जीवन भर सेवा करे, तो भी उऋण न होय॥
प्रज्ञा शील समाधि का, पावन पंथ दिखाय।
बने सहायक धरम में, सहज उऋण हो जाय॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : **रामप्रताप यादव**, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई २३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८८२५१ ● **पत्रिका में विज्ञापन दर :** आधा पृष्ठ रू. ५००/–, चौथाई पृष्ठ रू. २५०/– ● वार्षिक शुल्क रू. ५/–, आजीवन शुल्क रू. ५१/–

"विपश्यना"

पो. रजि. नं. (M) NS (C) 36

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To